

RNI 26281/74 रजि.नं. पी.बी./जे.एल.-011/2018-20



आर्य मर्यादा

आर्य प्रतिनिधि सभा पंजाब का प्रमुख पत्र

वर्ष: 45, अंक : 35 एक प्रति 2 : रुपये

कुल पृष्ठ : 8

रविवार 22 नवम्बर, 2020

विक्रमी सम्वत् 2077, सृष्टि सम्वत् 1960853121

दयानन्दाब्द : 196 वार्षिक शुल्क : 100 रुपये

आजीवन शुल्क : 1000 रुपये

दूरभाष : 0181-2292926, 5062726

E-mail: apspunjab2010@gmail.com,

www.aryapratinidhisabha.org

वर्ष-45, अंक : 35, 19-22 नवम्बर 2020 तदनुसार 8 मार्गशीर्ष, सम्वत् 2077 मूल्य 2 रु०, वार्षिक 100 रु० आजीवन 1000 रु०

घर में व्यवस्था होने से परिश्रम सफल होता है

ले०-स्वामी वेदानन्द (दयानन्द) तीर्थ

भूम्या अन्तं पर्येके चरन्ति रथस्य धूर्षु युक्तासो अस्थुः ।

श्रमस्य दायं वि भजन्त्येभ्यो यदा यमो भवति हर्म्ये हितः ॥

-ऋ. १०।११४।१०

शब्दार्थ-एके = कुछ एक **भूम्याः** = भूमि के **अन्तम्** = अन्त तक **चरन्ति** = विचरते हैं। दूसरे **रथस्य** = रथ की **युक्तासः** = जुड़ी हुई **धूर्षु** = धुरियों पर **अस्थुः** = बैठते हैं। **एभ्यः** = इनको **श्रमस्य** = परिश्रम का **दायम्** = देय, हिस्सा, भाग, तब **विभजन्ति** = विभक्त करके देते हैं **यदा** = जब **हर्म्ये** = घर में **हितः** = हितकारी **यमः** = नियन्ता, या व्यवस्थाविधान **भवति** = होता है।

व्याख्या- इस मन्त्र में एक ऐसा सङ्केत है जो श्रमवाद का बीज है। आज यम के अभाव में सचमुच संसार की वही अवस्था है जिसका चित्र मन्त्र में खींचा गया है। लाखों मनुष्य दिन-रात दौड़धूप करते रहते हैं। आज इस स्थान में हैं, कल उस प्रदेश में हैं। इतना घोर परिश्रम करके भी वे भूखे-नङ्गे हैं। शायद भर्तृहरि जी [वैरा० ५] ने ऐसों के लिए ही कहा था- '**भ्रान्तं देशमनेकदुर्गविषमम्**' = विकट कठिनताओं और विषमताओं से जूझते हुए अनेक देशों में घूमा, किन्तु '**लब्धो न काणवराटकोपि**'- मिली न कानी कौड़ी। लाखों श्रमजीवियों पर यह बात चरितार्थ होती है। इसके विपरीत कई ऐसे हैं, जिनके लिए हर समय रथ तैयार रहते हैं और वे उनमें सवार रहते हैं।

सचमुच बड़ा विषम है यह संसार। एक ही घर में ऐसी विषमता हो जाती है, जिसका जो दांव चलता है, उड़ा लेता है। इस सबका कारण है-व्यवस्था का न होना, अतः- '**श्रमस्य दायं विभजन्त्येभ्यो यदा यमो भवति हर्म्ये हितः**'-परिश्रम का दाय=फल तब इनको बाँटते हैं, जब घर में यम=नियम=नियन्त्रण लागू रहता है। परद्रव्यहरण की प्रवृत्ति मनुष्य में कुछ स्वाभाविक है। जीवन का धन यद्यपि कर्म है, परिश्रम है, तो भी अकर्मण्यता सबको रुचती-सी है। संसार में पदार्थ तो सभी हैं, किन्तु परिश्रम के बिना मिलने दुर्लभ हैं, अतः कई मनुष्य परिश्रम की चरम सीमा तक पहुँचते हैं, किन्तु वे बेचारे देखते रह जाते हैं और कोई एक चालाक या अनेक चालाक मिलकर उनके परिश्रम को खा जाते हैं। इसका अवश्य उपाय होना चाहिए, वह यह कि ऐसी व्यवस्था बनानी चाहिए कि सबको परिश्रमानुसार दाय=भाग=हिस्सा मिलना चाहिए, अधिक या न्यून नहीं। इस अवस्था को वेद ने 'यम'

कहा है। उसमें विशेष प्रयोजन है। यम का एक अर्थ दण्डधर है, अर्थात् व्यवस्था ऐसी होनी चाहिए कि उसका उल्लङ्घन करने वाले को दण्ड मिल सके। परमेश्वर सबको उनके कर्मों के अनुसार फल देता है। संसार में भी वैसा होना चाहिए। भगवान् दयानिधान दया करें, लोगों की मति फेरें, ताकि लोग कह सकें- '**माहं राजन्नन्यकृतेन भोजम्**' = हम दूसरे की कमाई न खाएँ।

(स्वाध्याय संदोह से साभार)

यस्य भूमिः प्रमाऽन्तरिक्षमुतोदरम् ।

दिवं यश्चक्रे मूर्धानं तस्मै ज्येष्ठाय ब्रह्मणे नमः ॥

-अथर्व० १०.७.३२

भावार्थ- हमारे पूज्य गौतमादिक ऋषियों ने अनुमान लिखा है- 'क्षित्यङ्-कुरादिकं कर्तृजन्यं, कार्यत्वात्, घटवत्।' पृथिवी और पृथिवी के बीच वृक्षादिक जितने उत्पत्तिमान् पदार्थ हैं, ये सब किसी कर्ता से उत्पन्न हुए हैं, कार्य होने से, घट की तरह। जैसे घट को कुम्हार बनाता है वैसे सारे संसार का निमित्त कारण परमात्मा है। उसी भगवान् का बनाया हुआ अन्तरिक्ष लोक उदर स्थानीय है। उसी परमात्मा ने मस्तक रूपी द्युलोक को बनाया है। ऐसे महान् ईश्वर को हमारा नमस्कार है।

यस्य सूर्यश्चक्षुश्चन्द्रमाश्च पुनर्णवः ।

अग्निं यश्चक्रे आस्यं तस्मै ज्येष्ठाय ब्रह्मणे नमः ।

-अथर्व० १०.७.३३

भावार्थ- यहाँ सूर्य और चाँद को जो वेद भगवान् ने परमात्मा की आँख बताया है, इसका यह अर्थ कभी नहीं कि वह जीव के तुल्य चर्ममय आँखों वाला है, किन्तु जीव की आँखें जैसे जीव के अधीन हैं ऐसे ही परमात्मा के सूर्य, चन्द्रमा, वायु, अग्नि, दिशा उपदिशा आदि अधीन हैं इस कहने से यह तात्पर्य है। यदि कोई आग्रह से परमेश्वर को साकार मानता हुआ सूर्य चाँद उसकी आँखें बनावे तो अमावस की रात्रि में न सूर्य है न चाँद है, इसलिए उपर्युक्त कथन ही सच्चा है।

यस्य वातः प्राणापानौ चक्षुरङ्गिरसोऽभवम् ।

दिशो यश्चक्रे प्रज्ञानीस्तस्मै ज्येष्ठाय ब्रह्मणे नमः ॥

-अथर्व० १०.७.३६

भावार्थ- जिस जगदीश्वर प्रभु ने समष्टि वायु को प्राणापान के समान बनाया, प्रकाश करने वाली किरणों जिसकी चक्षु की न्याई हैं अर्थात् उनसे ही रूप का ग्रहण होता है। उस परमात्मा ने ही सब व्यवहार को सिद्ध करने वाली दश दिशाओं को बनाया है। ऐसे अनन्त परमात्मा को हमारा बारम्बार प्रणाम है।

सन्ध्या का अर्थ एवं व्याख्या

ले.-डॉ. सत्यदेव सिंह 507 गोदावरी ब्लॉक, अशोका सिटी गोवर्धन चौक, कृष्णा नगर, मथुरा

संस्कृत भाषा के प्रकाण्ड पण्डित श्री वामन शिवराम आटे द्वारा रचित संस्कृत-हिन्दी कोश के अनुसार सन्ध्या शब्द की व्युत्पत्ति दो प्रकार से बताई गई है :-

१. सन्धि+यत्+टाप् (प्रत्यय) लगाकर,

२. सम्+ध्वै+अङ्+टाप् (प्रत्यय) लगाकर,

जिसका अर्थ होता है मिलाप, जोड़, प्रातः या सायंकाल का सन्धिवेला तथा प्रातःकाल, मध्याह्न काल तथा सायंकाल के समय की जाने वाली प्रार्थना।

महर्षि दयानन्द सरस्वती ने संस्कार विधि नामक पुस्तक के अन्तर्गत गृहस्थियों के लिए पाँच तरह के यज्ञों का विधान बताया है, ये पाँच यज्ञ हैं :- १. ब्रह्मयज्ञ (सन्ध्या), २. देवयज्ञ (अग्निहोत्र या हवन), ३. पितृ यज्ञ (माता-पिता की सेवा-सत्कार), ४. अतिथि यज्ञ (घर पर आये हुए साधु-सन्त, विद्वान् या अपंगादि की सेवा) तथा ५. बलिवैश्व देव यज्ञ।

इन पंच-महायज्ञों में सबसे पहला स्थान 'ब्रह्मयज्ञ' अर्थात् 'सन्ध्या' का ही है। सन्ध्या का अर्थ होता है- 'अच्छे प्रकार से ईश्वर का ध्यान करना। वैसे तो त्रिकाल सन्ध्या का विधान विद्वानों द्वारा बताया जाता है, किन्तु प्रातःकाल व सायंकाल की बेला में सन्ध्या-कर्म अवश्य ही प्रत्येक गृहस्थ, संन्यासी वा ब्रह्मचारी को करनी चाहिए।

मनुस्मृति के अनुसार साधक को सन्ध्या करने से पूर्व जल आदि से शरीर की शुद्धि तथा वैर, राग-द्वेष आदि के त्याग से आभ्यान्तर शुद्धि कर लेनी चाहिए।

'अद्भिर्गात्राणि शुध्यन्ति, मनः सत्येन शुध्यति।

विद्यातपोभ्याम् भूतात्मा, बुद्धिर्ज्ञानेन शुध्यति॥'-(मनु० अ० ५/श्लोक-१०८)

यदि हम अपनी प्रवृत्तियों पर विचार करें तो उनकी दो गतियों का पता चलता है-अन्तरमुखी प्रवृत्ति और बहिर्मुखी प्रवृत्ति। प्रायः हमारी बहिर्मुखी प्रवृत्ति रहा करती है। हम क्या खायें, क्या पीयें, किससे मिलें, कैसे धन कमायें आदि-आदि बाहर की बातों की ओर ही सोचा करते हैं। दिन रात में बहुत कम ऐसा होता है कि बाहरी बातों से हमको छुटकारा हो सके और हमारी प्रवृत्तियाँ अंतर्मुखी हो सकें। कुछ लोग तो कभी भी नहीं सोचते। हाँ, जब हम सो जाते हैं, और गहरी नींद आ जाती है तो हमारा कुछ देर के लिए बाहरी झंझटों से छुटकारा

हो जाता है, परन्तु कभी-कभी हमको अपने विषय में भी सोचना चाहिए। जो सदा संसार के विषयों में ही लिप्त रहता है वह रथ के उस स्वामी के समान है जो रथ को सजाने में ही लगा रहता है और स्वयं भूखा या नंगा रहता है।

हम अपनी प्रवृत्तियों के दो भाग कर सकते हैं एक तो केन्द्रोन्मुखी प्रवृत्तियाँ दूसरी केन्द्र प्रतिमुखी प्रवृत्तियाँ। यदि हमारी समस्त वृत्तियाँ केन्द्र की ओर ही रहें तो संसार का काम नहीं चल सकता। हम खाना कपड़ा आदि प्राप्त करने के लिए बाहर की चीजों से नाता जोड़ते हैं। परन्तु ऐसा नित्य करते करते हम अपने केन्द्र से दूर होते जाते हैं।

इसको रोकने के लिए दूसरी प्रवृत्ति केन्द्रोन्मुखी की आवश्यकता होती है याद रखना चाहिए कि किसी चक्र या वृत्त को बनाने के लिये दो चीजों की आवश्यकता होती है-एक केन्द्र और दूसरा अर्द्धव्यास। यदि केन्द्र हो और अर्द्धव्यास न हो तो वृत्त बन ही नहीं सकता और यदि केन्द्र न हो और अर्द्धव्यास हो तो भी वृत्त का बनाना असम्भव है। केन्द्र स्थान को नियत करता है और अर्द्धव्यास परिणाम को। यदि केन्द्र नियत है तो जितना बड़ा अर्द्धव्यास होगा उतना ही बड़ा चक्र बनेगा और यदि केन्द्र नहीं है तो चाहे छोटा अर्द्धव्यास हो चाहे बड़ा स्थानाभाव के कारण वृत्त नहीं बन सकता। इसका मोटा उदाहरण खूँटे से ले सकते हैं। बैल को खूँटे से बांध दो। बैल खूँटे के चारों ओर फिरेगा। परन्तु कितनी दूर तक? जितनी बड़ी रस्सी है। रस्सी चक्र के परिमाण को नियत करेगी। खूँटा स्थान को। यदि खूँटा न हो तो बैल रस्सी को लेकर भाग जायेगा। हमारी आत्मा केन्द्र है और हमारी भावनायें अर्द्धव्यास हैं। केन्द्रोन्मुखी और केन्द्र प्रतिमुखी प्रवृत्तियों के समन्वय से ही लोक-यात्रा चलती है। यदि इनके समन्वय में भेद पड़ जाए तो लोक-यात्रा असम्भव है। यजुर्वेद में एक बहुत ही उपयोगी मन्त्र आया है।

यस्मिन् चः साम यजूषि यस्मिन् प्रतिष्ठिता रथना-भाविवाराः। (यजु. ३४/५)

अर्थात् इस मन में ऋग्, यजु, सामवेद इस प्रकार लगे हैं, जैसे रथ के पहिये की नाभि में अरे लगे रहते हैं। पहिये में एक नाभि होती है और दूसरी परिधि। नाभि और परिधि में सम्बन्ध स्थापित करके उसे दृढ़ करने का काम अरों का है। अरे नाभि को

अपने स्थान पर रखते हैं। धर्म, धर्म-पुस्तक या ईश्वर भक्ति का सबसे मुख्य काम अरों का है और केन्द्र को परिधि की ओर, परिधि को केन्द्र की ओर खींचे रखते हैं। इससे आत्मा संसार के कामों में संलग्न होता हुआ भी अपने को नहीं भूलता। जिस प्रकार अरों के न होने से परिधि टूट जाती है और समस्त चक्र अस्त-व्यस्त हो जाता है इसी प्रकार धर्म का विचार न होने से मनुष्य संसार में इतना लिप्त हो जाता है कि उसकी संसार-यात्रा भी सुखमय नहीं होती। संसार के सुख क्षणभंगुर होते हैं, उनमें उसी समय तक सुख है जब तक उनका सम्बन्ध हमारी आत्मा से है। जहाँ मर्यादा नष्ट हुई वहाँ सुख भी नष्ट हुआ और संसार भी बिगड़ गया।

सन्ध्या करने का सबसे बड़ा फल यह है कि हम अपनी आत्मा और उसके भीतर व्यापक परमात्मा का चिन्तन करके अपने सांसारिक सम्बन्ध को मर्यादा में रखते हैं। दिन में दो बार सायं प्रातः यह सोचना कि हम आत्मा हैं, चेतन हैं, जड़ नहीं हैं, जड़ जगत से हमारा सम्बन्ध उतना ही है जितना हमारे लिये उपयोगी है यह कुछ कम नहीं है। हमारा मन उस कबूतर के समान है जिसके पैर में धागा बन्धा हुआ है। यह धागा उसे अपनी छतरी से नियत दूरी तक ही उड़ने देता है, ज्यों ही वह सीमा पार हुई धागा उसको छतरी की ओर खींच लेता है 'बस इससे आगे मत बढ़ो, बढ़ने में विपत्ति है।'

बुद्धिहीन बैल समझता है कि गले की रस्सी उसके लिये व्यर्थ बन्धन है। उसको खूँटे से बहुत दूर नहीं जाने देती। परन्तु उसको ज्ञात नहीं कि स्वामी ने यह रस्सी समझ बूझ कर बाँधी है। रस्सी तुड़ा कर खूँटे से भागना भयानक जंगल में भेड़ियों और व्याघ्र का शिकार होना है। सुख उसी समय तक है जब तक रस्सी से बँधे हुये मर्यादा के भीतर चर रहे हो। ईशोपनिषद् में कहा है-

"तेन त्यक्तेन भुञ्जीथाः"

त्याग भाव से संसार को भोगो। संसार-यात्रा के लिये संसार की वस्तुओं को भोगना तो है ही, परन्तु क्या भोगते ही चले जाओगे? कितना भोगोगे? यदि यात्रा का उल्लंघन किया तो याद रखो कि संसार की वस्तुओं से सुख, भाग जायेगा। संसार की हर एक वस्तु एक सीमा तक ही सुख देती है, उस सीमा को पार किया और दुःख आरम्भ हुआ। अंगूर को मुँह में रखो, मीठा लगेगा। उसको दो घन्टे मुँह में रखे रहो मतली आने

लगेगी। क्यों? इसलिये कि सीमा से बाहर चले गये। अंगूर मजेदार था। उसका मजा कौन चुरा ले गया? अंगूर तो तुम्हारे मुँह में है? उत्तर मिलेगा कि तुम्हारा सीमोल्लंघन ही मजे को उड़ा कर ले गया। अंगूर वही है। आपकी उच्छृंखलता मजे की बाधक है। परमात्मा-चिन्तन इसको संसार में मर्यादा के बाहर विचरने से रोकता है। वह हमारी वृत्तियों को भीतर की ओर खींचता रहता है। यदि इस चिन्तन को सर्वथा त्याग दिया जाये तो हम बिना खूँटे के बैल हो जाते हैं। मन लगाकर और अर्थ समझकर सन्ध्या करने वाले व्यक्ति को नित्य यह सोचने का अवसर मिलता है कि मैं क्या हूँ? परमात्मा क्या है? मेरा संसार से कितना सम्बन्ध है? मुझे संसार की वस्तुओं को भोगने की कहाँ तक आज्ञा है, और मेरा इसमें अपना कितना हित है?

एक और बात है। यह तो सब जानते हैं कि संसार की वस्तुओं में मजा है, सुख है, वे हमको अच्छी लगती हैं। परन्तु हम को यह ज्ञान नहीं कि वह मजा कितनी सीमा तक है। लोग इसलिये दुःख नहीं उठाते कि वे चीजों को भोगते हैं। वे इसलिये दुःख उठाते हैं कि वे सीमा से अधिक चीजों को भोगते हैं। शरीर धारण के लिये भोजन की आवश्यकता है परन्तु परिमित भोजन की।

इससे आगे क्या है? रोग और मृत्यु। वही दूध, वही घी, वही मीठा जो शरीर को पुष्टि देते हैं-मात्रा से अधिक रोग के कारण हो जाते हैं। अतः इस बात की बड़ी आवश्यकता है कि हमको जड़ वस्तुओं की उपयोगिता की सीमा का परिज्ञान होता रहे और हम यह न भूल जायें कि हर एक खाने पीने की चीजों के मजे में हमारा चेतन भाग कितना है? ईश्वर का चिन्तन हमको नित्य यह याद दिलाता रहता है कि हर वस्तु के मजे में इतना भाग आत्मतत्त्व का है।

एक और मोटा उदाहरण लीजिये। गेहूँ के दो दाने मुँह में डालिये और उनको चबाइये। पहले तो वे फीके से लगेंगे परन्तु चबाते-चबाते उनमें मिठास आ जायेगी। यह मिठास कहाँ से आया? यह केवल गेहूँ का मिठास नहीं है। जब आप चबाते हैं तो आपके मुख की ग्रन्थियों से एक प्रकार रस निकलता है। वह रस गेहूँ के दानों के साथ मिलकर उनको मीठा कर देता है। यह बात अगर आपकी समझ में न आवे तो किसी डॉक्टर के पास चले जाइये वह इस रहस्य को समझा

(शेष पृष्ठ 7 पर)

महर्षि दयानन्द के निर्वाण दिवस का सन्देश

दीपावली के पावन पर्व पर आर्य समाज के संस्थापक महर्षि दयानन्द सरस्वती जी का 137 वां निर्वाण दिवस सम्पूर्ण आर्य जगत् में उत्साह के साथ मनाया गया। सम्पूर्ण आर्य जगत् में दीपावली का पर्व महर्षि दयानन्द सरस्वती के निर्वाण दिवस के रूप में मनाया जाता है। एक ओर जहाँ इस पर्व को हम उत्साह से मनाते हैं वहीं दूसरी ओर हमें चिन्तन करने की आवश्यकता है कि महर्षि दयानन्द सरस्वती के आगमन से पूर्व क्या स्थिति थी, उनके आने के बाद क्या स्थिति बनी और उनके जाने के बाद आज क्या स्थिति है? क्या इस निर्वाण दिवस पर हमने इस पर चिन्तन किया? इन सब बातों के ऊपर चिन्तन करते हुए हमें विचार करना है कि आज हम कहां पर खड़े हैं? आईये महर्षि दयानन्द से पूर्व की स्थिति पर विचार करते हैं-

महाभारत काल के बाद भारत देश कई मत-मतान्तरों में जहाँ एक ओर विभक्त हो गया, वहाँ कई कुरीतियाँ भी उभर आईं। बौद्ध और जैन मत का प्रचार हो गया। धार्मिक कुप्रथाओं में यज्ञों में पशुबलि आदि की प्रथा चल पड़ी। सामाजिक क्षेत्र में जहाँ एक ओर जन्मना वर्ण व्यवस्था विशेषतः ब्राह्मण वर्चस्व वहाँ दूसरी ओर अस्पृश्यता के रोग भयावह रूप से देश में फैल गए। इनके साथ-साथ नारी के प्रति हेय और निरादर आदि पतनोन्मुख अबाध सामाजिक प्रवाह चल पड़े। सर्वाधिक दुर्दशा नारी और उसके साथ अविभाज्य गृहस्थ आश्रम दोनों की हुई। शंकराचार्य ने यद्यपि अपनी अगाध विद्या और तर्कशक्ति के प्रभाव से नास्तिकता के प्रचारक बौद्ध और जैन दोनों मतों का उन्मूलन कर दिया, विशेषतः बौद्ध मत के अनेक प्रमुख विद्वान् और अनुयायी बिना किसी प्रकार की तनिक हिंसा व बाध्यता के स्वयं भारत छोड़कर अन्य देशों में चले गए परन्तु शंकराचार्य नारी घृणा आदि दोषों से मुक्त न हो सके। मूर्तिपूजा और अवतार का शंकराचार्य ने प्रचार किया। संभवतः इस सम्बन्ध में किसी विद्वान् ने ठीक ही कहा है कि प्रत्येक सुधारक और महापुरुष जहाँ युगप्रवर्तक होने से नए युग का पिता होता है वहाँ अपने पूर्ववर्ती युग से प्रभावित हो उसका पुत्रवत् होता है। यह ऐतिहासिक तथ्य विश्व के प्रत्येक महापुरुष के जीवन और कार्यकलाप से अविभाज्य है। शंकर भी बौद्ध और जैनों की मूर्तिपूजा और अवतारवाद से अपने को अछूता न रख सके, पर इसके साथ ही शंकर ने अपने पूर्ववर्ती सम्प्रदायों से जो दो अन्य दोष अपनाएँ वे समाज के अत्यन्त विध्वंसक साबित हुए। शंकर ने ब्रह्मसूत्र वेदान्त भाष्य में लिखा कि शूद्र को वेद का अधिकार नहीं है क्योंकि स्मृति में शूद्र के वेद अध्ययन और श्रवण पर प्रतिबन्ध है। इस कारण से शूद्र के लिए ज्ञान और अनुष्ठान दोनों निषिद्ध हैं। यदि शूद्र कभी वेद सुन ले उसके कान में लाख व सिक्का डाल देना चाहिए। शूद्र शमशान तुल्य है और उसके समीप कभी वेदपाठ नहीं करना चाहिए।

स्त्री के सम्बन्ध में वेदान्त दर्शन में शंकराचार्य लिखते हैं कि-लड़की का पाण्डित्य घर के कार्यों में ही है। वेद में उसका कोई अधिकार नहीं है। अगर कोई चाहे कि मेरी लड़की पंडिता हो तो शंकराचार्य कहते हैं कि वह घर-गृहस्थी के विषय को ही जान ले क्योंकि उसका वेद में अधिकार नहीं है। आचार्य शुक्र ने अपनी स्मृति में लिखा कि पति की मृत्यु के साथ ही नारी भी मर जाए। इसी नीति में स्त्री और पापी को गवाही देने के अयोग्य ठहराया है। आजकल जिस तुलसी रामायण का इतना प्रचार है उसमें स्त्री और शूद्र को ताड़न के योग्य कहा है-शूद्र गंवार ढोल अरू नारी सकल ताड़न के अधिकारी शंकराचार्य ने अपनी प्रश्नोत्तरी में नारी के प्रति बड़े अपमानपूर्ण शब्द कहे हैं-

नारी को नरक का द्वार, नारी प्राणियों का बन्धन, नारी विषरूपी अमृत, अविश्वास का पात्र नारी।

परन्तु शंकराचार्य और मध्य युग के नीतिकारों और उनके वचनों के एकदम विपरीत ऋषि दयानन्द नारी के विषय में सत्यार्थ प्रकाश तृतीय सम्मुलास में क्या स्त्री और शूद्र भी वेद पढ़ें? इसके उत्तर में कहते हैं- सब स्त्री और पुरुष अर्थात् मनुष्य मात्र को वेद पढ़ने का अधिकार है। सब मनुष्यों के वेदादि शास्त्र पढ़ने सुनने के अधिकार का प्रमाण यजुर्वेद के 36वें अध्याय में दूसरा मन्त्र है- यथेमां वाचम् का अर्थ करते हुए ऋषि लिखते हैं कि, परमेश्वर कहता है कि जैसे मैं सब मनुष्यों के लिए इस कल्याण अर्थात् संसार और मुक्ति के सुख देनेहारी ऋग्वेदादि चारों वेदों की वाणी का उपदेश करता हूँ, वैसे तुम भी किया करो। इसी प्रकरण में महर्षि दयानन्द शूद्रों को वेदादि पढ़ने के सम्बन्ध में कहते हैं कि क्या परमेश्वर

शूद्रों का भला नहीं करना चाहता, क्या ईश्वर पक्षपाती है कि वेदों के पढ़ने-सुनने का शूद्रों के लिए निषेध और द्विजों के लिए आज्ञा करे। जो परमेश्वर का अभिप्राय शूद्रादि के पढ़ाने और सुनाने का न होता तो इनके शरीर में वाक् और श्रोत्र इन्द्रिय क्यों रचता? जैसे परमात्मा ने पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु, चन्द्र, सूर्य और अन्नादि पदार्थ सबके लिए बनाए हैं, वैसे ही वेद भी सबके लिए प्रकाशित किए हैं।

स्त्री को वेद तथा अन्य विद्याएं पढ़ने के अधिकारों के प्रश्न के उत्तर में ऋषि सत्यार्थप्रकाश के तृतीय सम्मुलास में श्रौत सूत्र के प्रकरण में इमं मन्त्रं पत्नी पठेत् अर्थात् स्त्री यज्ञ में इस मन्त्र को पढ़े।

महर्षि दयानन्द सरस्वती जी से पूर्व समाज में इस प्रकार की अनेकों कुरीतियाँ फैली हुई थी। सामाजिक क्षेत्र में महर्षि दयानन्द ने स्त्री जाति को शिक्षा का अधिकार दिलाया, शूद्रों की शोचनीय दशा को प्रस्तुत करते हुए उनको अधिकार दिलाने का प्रयास किया, बाल विवाह जैसी कुप्रथाओं के विरुद्ध आवाज उठाई, विधवा के पुनर्विवाह के लिए लोगों को जागरूक किया। धार्मिक क्षेत्र में फैले पाखण्डों, अन्धविश्वासों, जादू-टोने, तन्त्र-मन्त्र आदि से लोगों को मुक्त करने का कार्य किया। सभी पाखण्डों, मूर्ति पूजा को वेद विरुद्ध बताकर उनके कुप्रभाव से बचाने का प्रयास किया। राजनैतिक क्षेत्र में महर्षि दयानन्द सरस्वती जी ने स्वराज्य की प्राप्ति पर जोर दिया। महर्षि दयानन्द सरस्वती जी ने सत्यार्थ प्रकाश में बुरे से बुरे स्वदेशी राज्य को भी अच्छे से अच्छे विदेशी राज्य से बढ़कर बताया है। महर्षि दयानन्द द्वारा लिखित सत्यार्थ प्रकाश पढ़कर हजारों क्रान्तिकारी पैदा हुए जिन्होंने इस देश की आजादी के लिए अपना सर्वस्व न्यौछावर कर दिया।

महर्षि दयानन्द के आगमन से पूर्व हमारे देश में अनेक प्रकार की बुराईयाँ फैल चुकी थी। लोग धर्म के नाम पर मजहबों, सम्प्रदायों और मत-मतान्तरों में बंट चुके थे। जाति प्रथा अपना भयंकर रूप धारण कर चुकी थी। महर्षि दयानन्द ने सब बुराईयों की जड़ वेद विरुद्ध शिक्षा पद्धति का होना बताया। महर्षि दयानन्द जी का मानना था कि वेदों की शिक्षाओं का लोप होने के कारण भारतीय समाज अन्धकारग्रस्त हो चुका है। इसलिए महर्षि दयानन्द जी ने वेदों की ओर लौटने का सन्देश दिया। महर्षि दयानन्द जी ने बताया कि सब प्रकार की समस्याओं का समाधान वेद में दिया गया है। इसलिए महर्षि दयानन्द जी ने वेदों को सब सत्य विद्याओं की पुस्तक बताया और इसका पढ़ना-पढ़ाना और सुनना-सुनाना सब का परम धर्म बताया।

अगर हम महर्षि दयानन्द के समाज के प्रति, राष्ट्र के प्रति किए गए कार्यों पर चिन्तन करें तो ऐसा प्रतीत होता है कि महर्षि ने प्रत्येक क्षेत्र में जहाँ पर भी कोई कमी देखी उसे सुधारने का भरसक प्रयास किया। महर्षि दयानन्द अकेले ऐसे महापुरुष थे जिन्होंने हर कार्य में अपना योगदान दिया। ये सभी कार्य उनके जाने के बाद भी होते रहें इसके लिए महर्षि दयानन्द जी ने आर्य समाज की स्थापना की थी।

यह स्थिति तो महर्षि दयानन्द जी के पहले और उनके बाद की है परन्तु इस 137वें निर्वाण दिवस पर क्या हमने विचार किया कि महर्षि दयानन्द जी ने जिन उद्देश्यों के लिए इस क्रान्तिकारी संस्था की स्थापना की थी, क्या हम उस उद्देश्य को पूरा कर रहे हैं? महर्षि दयानन्द सरस्वती जी ने जिन कुरीतियों को लेकर सामाजिक चेतना का अभियान प्रारम्भ किया था, क्या हम उसे पूरा कर पाएँ हैं? धार्मिक क्षेत्र में पाखण्ड को लेकर ऋषि ने जो हलचल पैदा की थी, क्या उस पाखण्ड को हम खत्म कर पाएँ हैं? महर्षि दयानन्द जिस स्वदेशी के आधार राष्ट्र का भव्य स्वरूप देखना चाहते थे, क्या उसी के अनुरूप राष्ट्र का निर्माण हो रहा है? जिसे वेद की ज्योति के प्रकाश को महर्षि दयानन्द घर-घर में पहुँचाना चाहते थे, क्या उस वेद की ज्योति के प्रकाश को फैलाने का कार्य हो रहा है? इन सब बातों पर आज चिन्तन करने की आवश्यकता है। यह निर्वाण दिवस हमें प्रतिवर्ष सन्देश देता है कि हम महर्षि दयानन्द के सिद्धान्तों का कितना प्रचार कर रहे हैं।

प्रेम भारद्वाज

संपादक एवं सभा महामन्त्री

“आत्माहुति का फल”

ले.-डॉ. रामफल सिंह आर्य, C-18, तृतीय तल, आनन्द विहार उत्तम नगर नई दिल्ली-110059

ईश्वर की इस सृष्टि में मनुष्य एक ऐसा प्राणी है कि जिसके कार्य किसी अन्य मनुष्य के सहयोग के बिना नहीं चलते हैं। चल ही नहीं सकते क्योंकि उसका कार्य क्षेत्र ही ऐसा विशाल एवं विविधतापूर्वक है कि कोई भी मनुष्य चाहे वह कितना भी समर्थ एवं शक्तिशाली क्यों न हो, अकेले अकेले अपना कार्य नहीं चला सकता। मनुष्य का मनुष्यपन इसी में है कि वह सब मनुष्यों से अपना सम्बन्ध, अपना सामञ्जस्य बना के जीव जन्तुओं एवं पेड़ पौधों तक को अपना बनाना सीखे। इसके लिये उसे क्या करना पड़ेगा? उसे दूसरों के समीप जाकर उन्हें मित्र बनाना होगा। मित्रता के लिये क्या आवश्यक है? उन्हें अपने अनुकूल बनाना या अपने आप को उनके अनुकूल बनाना। इसी का नाम सामञ्जस्य है। याज्ञिक भाषा में इसे क्या कहेंगे? आहुति डालना, अरे वाह! कितना सुन्दर शब्द है!! आहुति, आ-हुति, अर्थात् सब ओर से सम्यक्तया यज्ञ का भाग हो जाना, आत्मदान कर देना। एक दूसरे के भीतर प्रवेश कर जाना। जब हम यज्ञ करने बैठते हैं तो मुख्य कार्य क्या करते हैं? हव्य पदार्थ को लेकर ब्रह्मभाव से उसे अग्निदेव को अर्पित करते हैं। यही यज्ञ की आत्मा है, यही त्याग यज्ञ का शुद्ध स्वरूप है। यदि त्याग की यह पावन भावना न हो तो यज्ञ का केवल भौतिक लाभ तो मिल जायेगा परन्तु हमारे अन्दर में यज्ञीय भावना का भी उदय न होगा और उसके विस्तृत लाभ से भी वंचित ही रहेंगे। यह रहस्य सामवेद के पूर्वाचिक के प्रथम भाग, आग्नेय पर्व के निरन्तर मन्त्र से और अधिक स्पष्ट हो जाता है।

नि त्वा नक्ष्य विशपते द्युमन्तं धीमहे वयम्।

सुवीरमग्न आहुत ॥ (६/२६)

अर्थात् (नक्ष्य) हे प्राप्त करने योग्य (आहुत) विश्व यज्ञ आहुति बन चुके (अग्ने) अग्रणी (विशपते) प्रजाओं के पालक। (वयम्) हम (त्वा) तुझ (द्युमन्तम्) द्युलोक वाले (सुवीरम्) सच्चे वीर को (निधीमहे) अपने यज्ञ का अगुआ निश्चित करते हैं।

उस परमकवि परमेश्वर ने कितने कम शब्दों में कितनी सुन्दरता

के साथ इस रहस्य को खोल कर रख दिया है, यह देखकर हम उसके प्रति अभिभूत हुए बिना रह नहीं सकते। सचमुच यह शक्ति तो केवल वेद में ही हो सकती है। तो आईये। मन्त्र के भावों पर दृष्टिपात करते हुए उसकी मूल भावना की ओर आते हैं। यहां पर अग्निदेव को प्राप्त करने योग्य और प्रजाओं का पालक कहा गया है। साथ ही उसे द्युलोक वाला भी कहा गया है। यही हमारे यज्ञ का अगुआ है। यदि इस अग्नि का लाभ हमें लेना है तो स्पष्ट है कि हमें नतमस्तक होकर उसके पास जाना होगा। उसके प्रति हमारा यह समर्पण ही हमारी प्रथम आहुति है। यही हमें सब श्रेष्ठ धनों की प्राप्ति करवाने वाली होगी। ‘अग्ने नय सुपथा रायेऽस्मान्’ (यजु. १०/१६) हे अग्ने हमें सुपथ पर ले चलो, स्वयं इस वाक्य में समर्पण निहित है। जब तक यह समर्पण न होगा अग्निदेव आगे नहीं ले कर जा सकेंगे। जैसे एक बच्चा अपने पिता की उंगली पकड़ कर भारी भीड़ में भी न तो कहीं भटकता है और न ही घबराता है। जहां उंगली छूटी कि उसकी घबराहट बढ़ी और वह भटका। वेद में ऐसे अनेकों मन्त्र हैं जहां अग्नि की स्तुति करते हुए उसे अपने अंग संग रहने की प्रार्थनायें की हैं। ऋग्वेद का प्रारम्भ ही इस पावन भावना से, अग्नि को अपना मार्गदर्शक बनाने की प्रार्थना से होता है।

अग्नि मीडे पुरोहितं यज्ञस्य देवमृत्वजम् (१/१/१)

मन्त्र कह रहा है कि हे अग्निदेव! हे ईश्वर! इस यज्ञ के वास्तविक होता वास्तविक पुरोहित तो आप ही हो। इसका उत्तम सम्पादन तो बस आप ही कर सकते हो। अतः आप ही की हम स्तुति करते हैं आप ही की कामना करते हैं। आप ही हमारे जीवन यज्ञ के पुरोहित बन जाईये और हमारा उत्तम मार्गदर्शन कीजिये।

अग्निं दूतं वृणीमहे होतारं विश्ववेदसम्। (साम. १/३)

अस्य यज्ञस्य सुक्रतुम् ॥

आदि-आदि अनेक मन्त्र उपस्थित किये जा सकते हैं। जब अग्निदेव को अपना पुरोहित और होता बनाना है तो यजमान को क्या

करना पड़ेगा? अपने आप को पुरोहित के हाथों में सौंपना पड़ेगा। बस यहीं तो उसकी आहुति है। अग्निदेव को इसी की आवश्यकता थी। यह आहुति डाली नहीं कि अग्निदेव की कृपा बिखरी नहीं। उसके आशीर्वादों का कोष खुला नहीं।

अग्निदेव को पृथ्वी का पति कहा गया है। पति अर्थात् रक्षक सम्राट। सम्राट को भी वेद में अग्नि कहा गया है। क्यों? क्योंकि वह तो राष्ट्र की वेदी कर मूर्तयज्ञ है। वह ब्रह्माण्ड के रहस्य को समझ चुका है और जानता है कि विश्व का यज्ञ परोपकार के सहारे चल रहा है। संसार में सर्वत्र यज्ञ ही तो हो रहा है। एक पदार्थ दूसरे से जुड़ा हुआ है, उसके आश्रय पर है, संगतिकरण की इससे सुन्दर और भला क्या उपमा हो सकती है? राष्ट्र की सर्वोच्च वेदी पर बैठे हुए सम्राट की अपनी आहुति जब तक इस यज्ञ में न डलेगी तब तक वह अनन्त प्रजाजनों का आदर्श नहीं बन सकता। यह कितने आश्चर्य की बात है कि जब तक हम अपने स्वार्थ से जुड़े हुए थे लोग हमसे दूर-दूर भागते थे और जब हम हवि बन गये तो सब आन कर हमें शीश झुकाने लगे। जब तक मुट्टी बन्द करके बैठे थे हमारी हवि किसी लाभ की न थी और जब हमने उसे अग्नि में डाल दिया तो वह विश्वरूप होकर सर्वत्र फैल गई। न केवल फैल गई अपितु सर्वत्र सुगन्ध का ही साम्राज्य हो गया। हमारा साम्राज्य हो गया तो फिर सम्राट होने में क्या सन्देह रहा? यह आत्माहुति जहां भी डलेगी वहीं पर अपना चमत्कार दिखायेगी। परिवार हमें समाज में, संस्था में, राष्ट्र में, कही भी क्यों न हो यह उस हवि डालने वाले को देव बना ही देती है। आहुति का सौन्दर्य जिसमें है? अपने आप को अग्नि का भाग बना देने में। जब तक आहुति डालने वाला अपने अस्तित्व को बचाने के लिये डरता रहा, घबराता रहा, तब तक वह बौना ही बना रहा, अज्ञात ही बना रहा किसी ने उसकी ओर देखा तक नहीं। लेकिन जब वह अग्नि के बीच में जाकर अपने अस्तित्व की चिन्ता न करता हुआ उसका अंग बन गया

तो समस्त संसार उसका हो गया और वह सबका हो गया। अंग अंगी बन गया और अंगी अंग। आहुति अग्नि बन गई और उसी में जाकर समा गई। उसे अग्नि का संग क्या मिला, वह तो विश्वरूप हो गई, कण-कण तक उसकी पहुंच हो गई।

इसी यज्ञीय भावना ने संगठन को जन्म दिया। एक जैसी विचारधारा वाले लोगों का एक समूह बन गया और वे एक दूसरे के सहयोगी बन गये। उनके सुख दुःख सांझे हो गये। संगतिकरण का यह मूर्त रूप धीरे-धीरे पूरे विश्व में फैल गया और सारा संसार एक नीड़ बन गया। इसी संगतिकरण ने सयुक्त राष्ट्र संघ को जन्म दे दिया और सबकी संस्था सबके लिये बन गई। आज हम उस अवस्था में आन पहुंचे हैं। जहां पर हमारा कोई भी कार्य अकेले से या स्वतन्त्र रूप से नहीं चल सकता। किसी ने कोई फैक्ट्री लगाई है तो कच्चे माल की आवश्यकता रहेगी। कच्चे माल से वांछित वस्तु के निर्माण के लिये विभिन्न प्रकार की मशीनों की आवश्यकता है ये मशीनें वह फैक्ट्री नहीं बनाती, कोई और बनाता है, वहां से लेनी पड़ेगी। फिर उन्हें चलाने के लिये विद्युत की आवश्यकता है या अन्य किसी प्रकार के ईंधन की, वह भी कोई दूसरा देगा। सारी व्यवस्था हो जाने पर कार्य करने के लिये, इन्जीनियर, कुशल श्रमिक, साधारण श्रमिक चाहिये। तैयार माल को ढोने के लिये गाड़ियां चाहियें, माल को खरीदने वाले ग्राहक चाहियें। तनिक विचार तो कीजिये कि एक कार्य करने के लिये कितने लोगों का, कितने विभागों का सहयोग अपेक्षित है। किसी भी क्षेत्र को ले लीजिये, सर्वत्र यहीं व्यवस्था करनी पड़ेगी। व्यापार खेती, पशु पालन, चिकित्सा, शिक्षा, कला कौशल आदि कुछ भी क्यों न हो।

यह संगतिकरण अति आवश्यक है। इसके बिना कोई भी अपने कार्य को सिद्ध नहीं कर सकता। जिसका जितना बड़ा कार्य है, उसे उतना ही अन्यो के सहयोग की आवश्यकता अधिक रहती है। यह सब क्या है?

(शेष पृष्ठ 5 पर)

पृष्ठ 4 का शेष-“आत्माहुति का फल”

विश्व धारा का एक मूर्त रूप है जो बहुत कम लोगों की समझ में आता है। जो लोग केवल अग्नि जला कर मन्त्र बोल कर उसमें हव्य पदार्थ छोड़ देने को ही यज्ञ का अन्तिम कार्य मान लेते हैं, वे बड़ी भूल में पड़े हैं। वह तो एक अभ्यास स्थली है जहां पर ‘स्वाहा’ और ‘इदम मम’ की आवृत्ति करवाई जाती है। जिससे यज्ञकर्ता का दान का स्वभाव सहज ही में बन जाये। आहुतियां डालते डालते यजमान में पूर्णता वह परिपक्वता आ जायेगी कि वह राष्ट्र यज्ञ के अन्दर आत्माहुति डालने से भी पीछे न हटे। अपितु सहर्ष, बिना किसी के कहे स्वयं अपनी अन्तःप्रेरणा से आत्माहुति प्रदान करे। हमने जो ऊपर संगतिकरण के उदाहरण दिये हैं उनमें हम क्या कर रहे होते हैं? अन्यों के भीतर प्रविष्ट ही तो हो रहे हैं। जब अपना भाग, अपने श्रम, समय और सहयोग द्वारा उस संस्था को अर्पित कर रहे हैं तो उनके भीतर ही तो जा रहे हैं। किसके माध्यम से जा रहे हैं? पृथ्वी के पति अग्नि के द्वारा। सत्य के द्वारा। यह सत्य जैसे ही हम जान लेते हैं तो देव कोटि में आ जाते हैं। शतपथकार कहते हैं-“सत्यं वै देवाः अमृतं मनुष्याः (१/१/४)।

अग्नि के इस संगतिकरण के कारण ही बच्चा, युवा बन रहा है, युवा परिपक्व बन रहा है, फिर प्रौढ़ बन कर अपने ज्ञान और अनुभव का दान दूसरों को कर रहा है। एक साधारण सा, अत्यन्त छोटा सा दिखने वाला बीज इसी अग्नि के संग से अंकुरित होकर छोटे से पौधे का रूप धारण कर लेता है जो धीरे-धीरे विशाल वृक्ष बन जाता है जो अपनी शीतल छाया और मधुर फलों का दान देकर यज्ञ को आगे बढ़ाने लगता है। यदि वह छोटा सा बीज अपने अस्तित्व को बचाने के लिये आत्माहुति न दे तो कभी उस विशालता को, उस गरिमा को, उस पूज्य भाव को प्राप्त ही न कर सकेगा जो एक वृक्ष को मिलता है। उसकी यह आत्माहुति ही उसे यह दिव्य भाव प्राप्त करवाती है। पृथ्वी पति अग्नि का संग उसे स्वयं ही पति बना देता है।

एक छोटा सा बालक जो अपने साथियों के साथ चोर सिपाही का खेल, खेल रहा था उसे एक अग्नि

शिखा ने ध्यानपूर्वक देखा और अपने संग ले गया। उसमें स्वयं अपना आधान किया और यज्ञ का भाग बना दिया। बालक ने आत्माहुति प्रदान की और भेड़ बकरियां चराने वाला वह बालक सम्राट चन्द्रगुप्त बन गया। आचार्य चाणक्य रूपी अग्नि के संग ने ही उसे यह रूप प्रदान किया। रूप है ही अग्नि का गुण। बिना अग्नि के संग के कभी रूप आता ही नहीं। ज्ञान पिपासा लिये हुए एक भिक्षुक यत्र तत्र भटक रहा था, कही उसे शान्ति मिलती ही न थी। अन्ततः ज्ञान की यह अभिलाषा उसे दण्डी स्वामी विरजानन्द जी के द्वार पर ले आती है और आचार्य प्रवर उसे अपना संगतिकरण प्रदान करते हैं। गुरुवर उसके भीतर की शक्ति को पहचान लेते हैं और उसे आत्माहुति डालने के लिये कहते हैं। यहां क्या देर थी? तुरन्त बिन विचारे ही सर्वस्व अर्पित कर देते हैं, इस आत्माहुति ने वेद ज्ञान के आलोक से न केवल संसार को ही आलोकित किया अपितु आहुतिदाता स्वयं भी कालजयी बन गया। जब तक सूर्य चन्द्र रहेंगे तब तक महर्षि दयानन्द जी का नाम भी रहेगा। यह वास्तव में किसका फल है? निश्चित रूप से आत्माहुति का ही तो है।

हम बहुत छोटे-छोटे स्वार्थों के वशीभूत होकर विश्व के पति अग्नि से दूर रहते हैं। न तो यज्ञ का भाग ही बनते हैं और न ही स्वयं को हवि बनाते हैं इसीलिये जीवन का अमूल्य समय व्यर्थ चला जाता है और अन्त में इस शरीर को तो यूं भी त्यागना ही पड़ता है, परन्तु वह किसी काम नहीं जाता है।

स्वयं को बचाने की लालसा में नष्ट भी हो गये और कुछ काम भी न आ सके। यद्यपि विश्वपति इस अग्नि की प्रेरणा हमें प्राप्त होती रही परन्तु हमने हवि छोड़ने की अपेक्षा मुट्टी बन्द करके रखने में अधिक परिश्रम किया। भय हमें डरता रहा और हम डरते रहे। अन्त में यह भय ही हमें निगल गया।

स्मरण रखिये कि वेद प्रजाओं को ‘विशः’ कहता है। विशः का अर्थ है जो एक दूसरे में प्रविष्ट हो जायें-घुस जायें। वास्तव में ऐसे ही व्यक्ति जो राष्ट्र की आग के वशीभूत हो जाते हैं, वही आहुति

बन जाया करते हैं। उन्हीं के वैयक्तिक गुणों से यज्ञ की यह आग सुरक्षित रहती है। वही प्रजाओं के पालन करने में भी समर्थ हुआ करते हैं। आत्माहुति की यह प्रबल भावना ही उन्हें आत्म बलिदान करने की प्रेरणा देती है। सीमा पर खड़ा हुआ एक सैनिक क्या केवल कुछ रूपों के लिये आत्म बलिदान करता है? जी नहीं। कदापि नहीं। उसे वह बलिदान करवाने के लिये प्रेरित करती है उसके अपने राष्ट्र के प्रति प्रेम और त्याग की भावना। उस समय वह केवल एक व्यक्ति न होकर अपने राजा का प्रतिनिधि होता है। तभी तो वह अपनी पीठ पर खड़े हुए समस्त राष्ट्र को देखता है। उसके भीतर जल रही प्रेम की अग्नि ही उसे इतना ऊंचा उठा देती है कि जिससे वह समस्त राष्ट्र का वन्दनीय हो जाता है। उसके बलिदान की गाथा जहां राष्ट्र के प्रत्येक नागरिक की आँखों में अश्रु बन कर बहती है, वहीं उसका शौर्य उसके साथियों की शिराओं में उष्णता ला देता है।

सबसे बड़ी बाधा हमारे सामने यह होती है कि हमें इस अग्नि पर विश्वास आता नहीं है। अतः उसे हम अपना मित्र नहीं बना पाते। मित्रता बिना विश्वास के होती ही नहीं। मित्रता नहीं इसलिये वह हमारा सहायक नहीं, सहायक नहीं तो फिर

आगे का सारा खेल ही समाप्त हो जाता है। अग्नि गया नहीं और अन्धेरा हुआ नहीं। अन्धकार किसका नाम है? जहां पर कुछ भी स्पष्ट न हो। इसी के कारण भटकाव होता है। इसलिये यह अत्यन्त आवश्यक है कि हम अग्निदेव को अपना मित्र बनायें।

अतः हे मेरे मन चल उस परम सहायक, परम कल्याण राशि अग्नि की ओर, वह तेरी प्रतीक्षा में खड़ा तेरी ओर ही निहार रहा है। हे मेरे सखाओ! हे भाईयो! निकाल दो इस व्यर्थ के भय को, हिचकिचाहट को, सशंय को अपने मन से और अपने आप को आहुति बना कर अर्पित कर दो उस परमोदार अग्नि को। विश्वास रखो कि यह तुम्हारी हवि को कभी व्यर्थ न जाने देगा। इसका तो स्वभाव ही है ऊंचा उठने और उठाने का। यह अग्नि अन्य कोई नहीं स्वयं ईश्वर ही है, उसकी व्यवस्था ही है। यह उसी की सुन्दर प्रेरणा है जो कहीं प्रेम बन कर, कहीं त्याग बन कर, कहीं शौर्य बन कर, कहीं वात्सल्य बन कर और कहीं करुणा बन कर हमें सदैव पुकारती रहती है। यही वे सुन्दर भाव हैं जिनसे मानव सत्य में मानव बनता है। अब जबकि स्वयं ईश्वर ही हमें प्रेरित कर रहा है तो फिर आत्माहुति में देर कैसी?

शोक समाचार

आर्य प्रतिनिधि सभा पंजाब के सदस्य तथा आर्य समाज बाजार श्रद्धानन्द के महामन्त्री श्री पुरुषोत्तम चन्द्र शर्मा जी का दिनांक 16-11-2020 को हृदय गति रूकने से अकस्मात् देहान्त हो गया। उनका अन्तिम संस्कार 17-11-2020 को अमृतसर में वैदिक रीति से किया गया। श्री पुरुषोत्तम चन्द्र शर्मा जी आर्य समाज के कर्मठ कार्यकर्ता थे। आर्य समाज बाजार श्रद्धानन्द अमृतसर के अनेक पदों पर रहते हुए उन्होंने सराहनीय कार्य किया। यज्ञ के प्रति उनकी अगाध श्रद्धा थी। उनके निधन से आर्य समाज की अपूरणीय क्षति हुई है।

आर्य प्रतिनिधि सभा पंजाब श्री पुरुषोत्तम चन्द्र शर्मा जी के अकस्मात् निधन पर गहरा दुःख व्यक्त करती है। मैं आर्य प्रतिनिधि सभा पंजाब एवं पंजाब की समस्त आर्य समाजों एवं शिक्षण संस्थाओं की ओर से दिवंगत आत्मा को श्रद्धा सुमन अर्पित करता हूँ तथा परमपिता परमात्मा से प्रार्थना करता हूँ कि वे दिवंगत आत्मा को शान्ति एवं सद्गति प्रदान करें तथा शोक संतप्त परिवार को धैर्य शक्ति प्रदान करें। दुःख की इस घड़ी में हम सभी शोक संतप्त परिवार के साथ हैं।

प्रेम भारद्वाज
संपादक एवं सभा महामन्त्री

मनुष्य का परम धर्म

ले.-अशोक आर्य पाकेट १/६१ रामप्रस्थ ग्रीन से. सैक्टर ७ वैशाली

वेदवेत्ता स्वामी दयानंद सरस्वती जी यजुर्वेद का भाष्य करते हुए द्वितीय अध्याय के भाष्य के आरम्भ में लिखते हैं कि दूसरे अध्याय में उस विद्याओं की सिद्धि करने के लिए विशेष विद्याओं का प्रकाश किया है कि जो जो प्रथम अध्याय में प्राणियों के सुख के लिए प्रकाशित की हैं। उनमें से वेद ने अनेक प्रकार के पदार्थों के बनाने को हस्तक्रियाओं के सहित विद्याओं के प्रकार प्रकाशित किये हैं। उनमें से प्रथम मन्त्र में यज्ञ सिद्ध करने के लिए साधन अर्थात् उनकी सिद्धि के निमित्त कहे हैं।

दूसरे अध्याय के परिचय स्वरूप स्वामी जी ने इन शब्दों में स्पष्ट किया है कि जब भी कभी कोई नया कार्य आरम्भ किया जाता है तो उस कार्य पर कुछ प्रकाश डालना आवश्यक होता है। इस प्रकाश डालने की क्रिया स्वरूप यजुर्वेद के द्वितीय अध्याय का यह प्रथम मन्त्र हमारे सामने आता है, जो इस प्रकार है:-

कृष्णोऽस्याखरेष्टोऽग्नये त्वा जुष्टं प्रोक्षामि वेदिरसि बर्हिषे।

त्वा जुष्टां प्रोक्षामि बर्हिरसि सुग्भयस्त्वा जुष्टं प्रोक्षामि।।।। यजुर्वेद २.१

भावार्थ

इस मन्त्र का भावार्थ स्वामी दयानन्द सरस्वती जी ने इस प्रकार किया है:- ईश्वर उपदेश करता है कि सब मनुष्यों को वेदी बनाकर और पात्र आदि होम की सामग्री ले के उस हवि को अच्छी प्रकार शुद्ध कर तथा अग्नि में होम कर के किया हुआ यज्ञ वर्षा के शुद्ध जल से सब औषधियों को पुष्ट करता है। उस यज्ञ के अनुष्ठान से सब प्राणियों को नित्य सुख देना मनुष्यों का परम धर्म है।

स्वामी जी द्वारा दी गई मन्त्र की इस व्याख्या के आलोक में यह स्पष्ट हो जाता है कि हमारा जीवन तीन बातों पर आधारित होता है। यह तीन बातें ही मानव का मुख्य ध्येय भी होती हैं। अतः इस मन्त्र में जो तीन बातें उभर कर सामने आती हैं, उन पर आगे की पंक्तियों से हम विचार करते हैं। यथा:-

१. अग्नये-प्रकाश से युक्त अग्निरूप प्रभु की उपासना करना:-

मन्त्र के इस खंड के प्रथम भाग में स्पष्ट किया गया है कि परमपिता प्रकाश से युक्त है। वह प्रभु प्रकाश से युक्त क्यों है?, इसे स्पष्ट करने के

लिए हम कह सकते हैं कि इस संसार को प्रकाशित करने वाले जितने भी सूर्य, चाँद, तारागण आदि जितने भी पदार्थ हैं, उन सब को प्रकाशित करने वाला वह ईश्वर ही है। ईश्वर के अतिरिक्त कोई अन्य शक्ति ऐसी नहीं है, जो जगत् के किसी एक कण को भी प्रकाशित कर सके। फिर समग्र सृष्टि तो बहुत दूर की बात है। स्पष्ट है कि पूरी सृष्टि तो क्या इसके किसी खंड को प्रकाशित करने के लिए भी ईश्वर की प्रेरणा, उसके मार्ग दर्शन की आवश्यकता है। उस से प्राप्त प्रकाश के बिना विश्व का कोई अन्य पदार्थ, चाहे वह सूर्य ही क्यों न हो, कभी प्रकाश नहीं दे सकता। इन साधनों को प्रकाश देने वाला और फिर उस प्रकाश को आगे फैलाने का मार्ग दर्शाने वाला वह परमपिता परमात्मा ही है।

परमपिता परमात्मा हमारे अन्दर भी ज्ञान का प्रकाश करे, हमारी सदा ही यह इच्छा रहती है। हमारे अन्दर प्रकाश के लिए भी दो प्रकार हैं। एक तो हमें देखने की शक्ति दे और दूसरे प्रकाश का अर्थ ज्ञान से भी होता है। अतः परमपिता परमात्मा हमारे अन्दर सब प्रकार के ज्ञानों का प्रकाश कर दे। हमारी कामना तो बहुत बड़ी है किन्तु इस कामना को पूर्ण करने के लिए जिस साधना की आवश्यकता होती है, जिन सिद्धियों को प्राप्त करने की आवश्यकता होती है, राग, रंग में व्यस्त होकर उन सब को पाने की ओर हमारा ध्यान कभी जाता ही नहीं। यदि हमारा ध्यान इन सब को पाने के लिए नहीं जाता है तो यह सब हम कैसे प्राप्त कर सकते हैं? इसलिए मन्त्र अपने इस प्रथम भाग में उपदेश कर रहा है कि हम उस ज्ञान स्वरूप, अग्निमय प्रभु की उपासना करें अर्थात् उस के निकट बैठने के अधिकारी बनें अर्थात् इसके लिए हम सदा उस प्रभु की स्तुति रूप प्रार्थना करें।

२. बर्हिषी-हृदय में से वासनाओं को उखाड़ फेंकना:-

मन्त्र अपने इस उपदेश के दूसरे भाग में यह उद्घोषणा कर रहा है कि उस प्रभु की उपासना के लिए, उसकी निकटता को पाने के लिए हमें अपनी शुद्धि करनी आवश्यक है। हमारा अन्दर अनेक प्रकार की बुराइयों से निरंतर दूषित हो रहा होता है। किसी भी दूषित स्थान पर उत्तम पदार्थ को रखने वाले को मूर्ख कहा जाता है। एक उत्तम गृहिणी मानो शौच स्थान

पर बड़े अच्छे अच्छे पकवान् अर्थात् उत्तम घी से बने हुए हलवा, पूरी, सब्जी तथा उत्तम दूध से बने हुए स्वादिष्टखीर को रखकर किसी अभ्यागत् को कहे कि आइये मुनिवर बैठिये भोजन करिए। बताओ यह सब देखकर मुनिवर यदि कुछ न भी बोले तो वह क्या सोचेगा और क्या करेगा? यदि उस मुनि के स्थान पर आप ही हों तो आप क्या सोचोगे, क्या करोगे?, यह स्वादिष्ट भोजन आपको कैसा लगेगा और आप उस गृहिणी को कैसा आशीर्वाद देंगे? इस सब पर विचार करें तो हम कह सकते हैं कि भोजन में सब प्रकार की उत्तमता होते हुए भी हम इसके पास तक भी न जावेंगे। यदि पास चले भी जावें तो एक ग्रास भी हमारे मुंह में लेने की इच्छा नहीं होगी और यदि मान लें कि किसी ने एक ग्रास उठा भी लिया तो उस ग्रास को मुंह में डालने पर पता चलेगा कि उस में कोई स्वाद ही नहीं है और फिर अनायास ही मुंह से आशीर्वाद के रूप में यह शब्द निकलेगा कि यह महिला तो महामूर्ख है, जो भोजन करने का कोई अच्छा स्थान ही नहीं चुन सकी। हां! किसी साफ सुथरे स्थान पर यदि वह इससे निम्न भोजन भी परोस देती तो वह निम्न भोजन भी अत्यधिक स्वाद देने वाला बनकर आशीर्वादों की वर्षा करता है।

इस से यह बात निकल कर सामने आती है कि जिस हृदय में हम उस परमपिता परमात्मा को बैठाना चाहते हैं, उस हृदय का शुद्ध और पवित्र होना आवश्यक है। मलयुक्त हृदय में परमपिता परमात्मा कभी नहीं आया करता। हमारे अन्दर के मलों में से सब से दुष्ट मल होता है हमारे अन्दर की वासनाएं। यह वासनाएं ही होती हैं, जो हमें प्रभु के पास तक नहीं जाने देतीं और प्रभु के स्थान पर राग, द्वेष, लोभ, अहंकार आदि दुष्ट प्रवृत्तियों का केन्द्र बना डालती हैं। यह सब प्रवृत्तियां हमें सदा ही ईश्वर से दूर ले जाने वाली होती हैं। अतः सब से पूर्व हमें इन दुष्ट प्रवृत्तियों अर्थात् वासनाओं को निकाल बाहर फेंकना होता है। इन दुष्ट वासनाओं के निकल जाने से हमारा अंतर पटल धुल कर पूरी प्रकार से इस प्रकार साफ और पवित्र हो जाता है, जिस प्रकार अच्छी वर्षा होने से हमारा वायुमंडल धुलकर साफ और पवित्र हो जाता है। अतः इस प्रकार खाली तथा पवित्र हुए

स्थान पर प्रभु बिन पुकारे ही आकर बैठ जाता है। अतः परमपिता को प्राप्त करने का यह दूसरा उपदेश इस मंत्र ने किया है कि हम वासनाओं को निकालकर अपने अन्दर को पवित्र करें।

३ ज्ञान का प्रसार करना अथवा प्रजारूप अग्नि में ज्ञान स्वरूप घृत का प्रस्रवण करने वाले चम्मच बनना:

परमपिता परमात्मा अपने पैदा किये गए सब प्राणियों का पालक होता है। जिस प्रकार एक माँ साधनहीन होते हुए भी अपने बालक के पालन पोषण में कोई कसर नहीं उठा रखती, उस प्रकार ही परमपिता परमात्मा भी अपनी प्रजा के पालन के लिए ठीक इस प्रकार का चम्मच बनकर कार्य करता है, जिस प्रकार अग्निहोत्र का घी से भरा हुआ चम्मच अग्नि को तीव्र करने का कारण होता है किन्तु अग्नि की गर्मी से स्वयं भी तपता रहता है। अतः मन्त्र अपने इस तृतीय और अंतिम भाग में उपदेश करते हुए प्रकाश डाल रहा है कि प्रजारूप अग्नि को प्रकाशित करने के लिए अर्थात् संसार के सब प्राणियों में उत्तम ज्ञान का प्रकाश करने के लिए हम ज्ञानरूप घृत का वह चम्मच बने, जो चम्मच इस यज्ञ की अग्नि को विस्तृत करने के लिए यज्ञ में घी की आहुति डालने से स्वयं भी तप जाता है और अन्य सब प्राणियों को भी तप्त कर उन में ज्ञान का प्रकाश करता है। अतः हे यज्ञ करने के, ज्ञान प्राप्त करने के अभिलाषी प्राणी! तू स्वयं ही इस संसार के सब प्राणियों को प्रकाशित करने के लिए अपने अन्दर ज्ञान का भण्डार भर ले। जब तू स्वयं ज्ञानी बन जावेगा तो इस जगत् के अन्य प्राणियों को प्रकाशित करने के लिए योग्य व्यक्ति होने के नाते उन सब प्राणियों को भी ईश्वरीय ज्ञान से प्रकाशित कर सकेगा।

इस प्रकार मन्त्र स्पष्ट करता है कि हे मानव! स्वयं को उत्तम बनाने के लिए अपने को इस योग्य बना कि तू उस प्रभु के निकट बैठने का अधिकारी बन सके, अपने अन्दर की वासनाओं को प्रभु की निकटता पाने के लिए अपने अन्दर से निकाल बाहर कर तथा स्वयं ज्ञान का चम्मच बनकर स्वयं भी ज्ञानी बन और फिर अन्य लोगों में भी इस ज्ञान का प्रचार कर।

पृष्ठ 2 का शेष-संख्या का अर्थ एवं व्याख्या

देगा। यह दृष्टान्त हमने इसलिये दिया है कि आप यह समझ जायें कि बाहरी वस्तु के सुखप्रद होने में आपका भीतरी भाग कितना है। यदि इस रस का निकलना बन्द हो जाय तो चीजों का मीठा लगना भी बन्द हो जाय।

यह दृष्टान्त ऊपरी है। एक भीतरी दृष्टान्त लीजिये। आपको जो चीज बहुत ही मजेदार लगती हो उसको खाने बैठिये परन्तु ऐसे समय जब आपको अनेक मार्मिक चिंताओं ने घेरा हुआ हो, आप क्या कहा करते हैं? अजी खाना मुंह में जाता ही न था, बहुत कुछ, खाने का यत्न किया, परन्तु खाया नहीं गया। मैं पूछता हूँ किसका दोष है? खाने का नहीं, खाना तो भला चंगा है, दोष है आपकी भीतरी भावनाओं का, जिन्होंने मीठे खाने में विष मिलाकर उसे कड़वा कर दिया। इसलिए डॉक्टर लोग कहते हैं कि खाने के समय मन को आनन्द में रखो, हंसी खुशी से खाओ, नाक-भों चढ़ाकर मत खाओ। जैसे बाहरी वस्तु को मीठा बनाने के लिए मुख की ग्रन्थियों के रस की आवश्यकता है उसी प्रकार भीतरी वृत्तियों अर्थात् आनन्दयुक्त मन की भी जरूरत है। मन की शान्ति में आत्मतत्त्व बड़ा बहुमूल्य अंग है। संख्या हमको इस तत्व की याद दिलाती है।

संख्या करने में हम ईश्वर की खुशामद नहीं करते। किसी ऐसे व्यक्ति के गुणों का चिन्तन करना जिससे हमको लाभ पहुँचता है खुशामद नहीं है। खुशामद वह होती है जिसमें किसी को खुश करके उससे अनुचित लाभ उठाने का यत्न किया जाए जिसके हम अधिकारी नहीं हैं।

जितनी वस्तुओं को हम भोगते हैं उनके गुणों का पहले चिन्तन करते हैं। प्यासा मनुष्य जल को चाहता ही तब है जब उसको उसकी शीतलता का ध्यान आ जाता है। हम किसी मनुष्य के पास उसके गुणों से लाभ उठाने के लिए उसी समय जाते हैं जब हम उसके गुणों का पहले चिन्तन करते हैं, अतः गुणों का चिन्तन खुशामद नहीं है और यदि यह चिन्तन, स्पष्ट शब्दों द्वारा किया जाए तो चिन्तन में कोई बाधा नहीं पड़ती अपितु चिन्तन अधिक स्पष्ट हो जाता है क्योंकि शब्दों का उच्चारण स्पष्ट चिन्तन का सहायक होता है। जैसे-बच्चा चिल्लाता है “बर्फ वाले! बर्फ दे जाओ” यह खुशामद नहीं है। बर्फ के साथ बर्फ वाले के गुणों का चिन्तन बच्चे के मस्तिष्क में हो रहा है। शिष्य गुरु से प्रार्थना करता है ‘गुरु जी व्याकरण पढ़ाइये’ इसका अर्थ यह है कि गुरु जी कहते ही गुरु जी के गुणों का चिन्तन हुआ। इसी चिन्तन से

प्रेरित हो कर ही तो प्रार्थना की गई। कभी-कभी गुणों का चिन्तन मूक भी होता है। जैसे कोई अपने पिता के पास जाकर कहता है “पिता जी, दो रुपये चाहिए” ऐसा प्रार्थी मन में जानता है कि पिता रुपये वाला भी है और उसका मुझ पर स्नेह भी है तथा वह कंजूस भी नहीं है। यदि पुत्र के ज्ञान में पिता के यह गुण विद्यमान न हो तो वह कदापि ऐसी प्रार्थना न करे, परन्तु यदि लाभ पहुँचाने वाला व्यक्ति अदृष्ट और अति सूक्ष्म हो और साधारणतया उधर को ध्यान न जाता हो तो प्रार्थी के लिए स्पष्ट शब्दों में प्रार्थना आवश्यक हो जाती है, क्योंकि जैसे-जैसे शब्द व्यक्त किये जाते हैं उन शब्दों के वाच्यगुणों का भी स्पष्टतया चिन्तन होने लगता है। माता के हाथ से प्राप्त की हुई रोटी को खाता हुआ पुत्र यदि यह चिन्तन भी करता है कि मेरी प्यारी माता मुझे खिला रही है तो उसका न केवल माता के प्रति प्रेम ही अधिक हो जाता है अपितु उस प्रेम के आनन्द का अधिक भाग पुत्र को भी मिलता है। प्रेम का आनन्द उभयपक्षीय है, जो प्रेम करता उसे भी मजा आता है और जिससे प्रेम किया जाता है उसे भी मजा आता है। छोटे बच्चे प्रायः यह आग्रह किया करते हैं कि उनकी माता ही उनको रोटी खिलावे। वे दूसरे के हाथ से खाना पसन्द नहीं करते। यह है तो बच्चों की सी बात, पेट तो खाने से भरेगा खिलाने वाले के हाथ से नहीं, परन्तु इस साधारण-सी घटना के पीछे एक बहुत बड़ी दार्शनिक सच्चाई छिपी हुई है। बच्चा रोटी भी खाता है और माता के प्रेम का भी आस्वादन करता है। इसी प्रकार संसार के भोग्य पदार्थों के साथ-साथ यदि यह भावना भी रहे कि ये भोग्य पदार्थ किसी परम कारुणिक सन्त की ओर से आ रहे हैं तो उनसे प्राप्त होने वाले आनन्दों में विश्वास आ जाता है। इसलिए जो लोग ‘खुशामद खुशामद’ कह कर ईश्वर की भक्ति की अवहेलना करते हैं, वे अज्ञानवश अपने को एक परम आनन्द से वंचित रखते हैं।

आप बाजार से मिठाई मोल लेकर खाइये और अपने मित्र की भेजी हुई मिठाई खाइये। इन दोनों के आस्वादन में भेद होगा। पहली मिठाई में केवल स्थूल मिठास है। दूसरी में स्नेह का सूक्ष्म मिठास भी विद्यमान है। उपहार भेजने की जो प्रथा है उसके पीछे भी यह सत्यता निहित है। उपहार का प्रकट रूप से कोई अधिक मूल्य नहीं, परन्तु जब उस उपहार के साथ प्रेम या आदर या मान संयुक्त रहता है तो उसका मूल्य बढ़ जाता है। तभी तो

कहावत है-“मान का पान भी बड़ा होता है।”

संख्या के मंत्रों का यही प्रयोजन है कि वे स्पष्ट रूप में उस सत्ता के गुणों का वर्णन करते हैं जो हमको संसार में सब कुछ दे रही है। उनके गुणों का चिन्तन उस सत्ता के लिए नहीं अपितु हमारे आन्तरिक विकास के लिए आवश्यक है।

कुछ लोगों का आक्षेप है कि संख्या या प्रार्थना नियत शब्दों में क्यों की जाये? क्या ईश्वर केवल संस्कृत भाषा ही समझता है? क्या वह हमारे हृदय की भाषा नहीं जानता? ऐसा आक्षेप करने वाले संख्या के महत्त्व को नहीं समझते। हम ऊपर कह चुके हैं कि ईश्वर के गुणों का चिन्तन आवश्यक है। हम व्यर्थ ही उससे कुछ मांगते नहीं और न यह कोई अच्छी बात है कि हम ईश्वर से जो चाहे मांगा करें। यहाँ प्रश्न यह नहीं है कि ईश्वर सुनता है या नहीं और संस्कृत समझता है या अरबी। प्रश्न यह है कि हमको अपने मन में किन गुणों का चिन्तन करना है। एक मनुष्य कह सकता है ‘हे प्रभु! मैं आज डाका डालने जा रहा हूँ। मुझे सफलता प्रदान कीजिए’ परन्तु ऐसी प्रार्थना वही करेगा जिसको यह विश्वास होगा कि ईश्वर डाकुओं की भी सहायता किया करता है। ऐसे गुणों का चिन्तन उसके आत्मिक विकास के लिए कितना लाभ या हानि पहुँचायेगा इस पर पाठकगण स्वयं विचार कर सकते हैं। मस्तिष्क का विकास तो विचारों से होगा। हमको प्रार्थना में केवल यही नहीं करना है कि जो विचार हमारे मन में हों, उनको व्यक्त कर दें। इसके अतिरिक्त सबसे बड़ा और आवश्यक कार्य यह है कि हमारे मन में वे तरंगे भी उत्पन्न हो जाएँ जो साधारणतया उत्पन्न नहीं हो रहीं। हम अपने मस्तिष्क के तल को इतना ऊँचा करना चाहते हैं। अतः इसके लिए विकास के आरम्भ काल में नियत शब्द चाहिए। भक्त की वह अवस्था भी आ सकती है जब उसका मन इतना उच्च हो जाए कि बाह्यशब्दों की आवश्यकता न पड़े, परन्तु यह तो बड़े उन्नत मस्तिष्कों की बात है। प्रत्येक पुरुष ऐसा नहीं होता और जब तक वह ऐसा न हो उसको संख्या के नियत शब्द अपने समक्ष रखने चाहिए। शब्द भावों के रक्षक होते हैं, बिना शब्दों के भाव लुप्त हो जाने का भय रहता है। अतः शब्दों की अवहेलना वा उपेक्षा नहीं की जा सकती। यह ठीक है कि शब्द सब कुछ नहीं है। केवल रटना लाभकर नहीं परन्तु यह भी कहना अनुचित होगा कि शब्द कुछ भी नहीं

हैं। वेद मंत्रों में जो शब्द आये हैं वे अर्थ सहित समझने से आदर्श हमारे हृदय पटल से ओझल नहीं होने पाता। बिना मंत्रों के भी हम अपने भाव या अपनी इच्छायें ईश्वर के प्रति प्रकट कर सकते हैं। परन्तु केवल इतना ही करना भिखारीपन होगा। प्रत्येक पुरुष की इच्छायें उसकी प्रवृत्तियों और योग्यता के अनुसार होती हैं। एक शराबी ईश्वर से शराब की याचना कर सकता है। एक कामी ईश्वर से कामसाधना के लिये प्रार्थी हो सकता है परन्तु हमारी इच्छाएँ पूरी होती रहें यही तो जीवन का उद्देश्य नहीं होना चाहिए। संख्या का यह प्रयोजन नहीं कि हमारी इच्छाओं की पूर्ति हो जाय। संख्या का प्रयोजन तो यह है कि बुरी इच्छायें आने न पावें और यदि उठें भी तो वे मुरझा जावें। आत्मोन्नति के लिये साधक द्वारा ईश्वर की प्रार्थना की जानी चाहिए। हृदय रूपी उद्यान में फल फूल भी उगते हैं, झाड़ु झंकार व घास फूस भी। सभी की उन्नति के लिए तो प्रार्थना नहीं की जानी चाहिए। घास को उखाड़ना भी जरूरी है जिससे फल फूल को बढ़ने का अवसर प्राप्त हो सके।

परमात्मा (ईश्वर) के बारे में वेद की आज्ञा है कि वह हमारा बन्धु है जनिता (पिता) है, वह हमारे सब कार्यों को पूर्ण करने वाला है। वह परमात्मा सम्पूर्ण लोकों के नाम, स्थान व जन्मों को जानता है और वह सांसारिक सुख-दुःख से रहित, नित्यानन्द युक्त मोक्षस्वरूप धारण करने वाले परमात्मा में मोक्ष को प्राप्त होकर विद्वान लोग स्वेच्छापूर्वक विचरण करते हैं। वही परमात्मा सच्चे साधक का उपासक का परमगुरु, आचार्य, राजा और न्यायाधीश है। अतः अपने लोग मिलकर सदा उस परमपिता परमात्मा (ईश्वर) की स्तुति-प्रार्थना श्रद्धापूर्वक किया करें। वेद-मन्त्र इस प्रकार है :-

“स नो बन्धुर्जनिता स विधाता धामानि वेद भुवनानि विश्वा।

यत्र देवा अमृतमानशा-नास्तृतीये धामन्नधैरयन्त।।”

(यजु. ३२/१०)

पदार्थ:-

‘वही हमारा बन्धु सखा है, वही विधाता जनिता माता।

जन रहा सब धाम भुवन वह, करता लेखा-जोखा खाता।

उसी एक परमेश्वर की हम, नित्य स्तुति करें प्रार्थना।

तृतीय धाम पहुँचाने वाला, वही मोक्ष-सुख भरे दामना।

प्रेमभाव से मिलजुलकर हम, निर्मल मन हो ध्यान धरें।

अमृत आनन्द पाने हेतु, नित उसका हम स्तुति-गान करें।।’

आर्य समाज शहीद भगत सिंह नगर जालन्धर में ऋषि निर्वाण एवं दीपावली पर्व मनाया



आर्य समाज शहीद भगत सिंह नगर जालन्धर में दीपावली एवं महर्षि दयानन्द बलिदान दिवस के अवसर पर साप्ताहिक हवन यज्ञ का आयोजन किया गया जिसके मुख्य यजमान श्री कुबेर शर्मा एवं श्रीमती नंदिनी शर्मा ने सपरिवार यज्ञ वेदी पर उपस्थित होकर पवित्र पावन वेद मंत्रों से आहुतियां दी। चित्र एक एवं चित्र दो में आर्य समाज के सदस्य सामूहिक चित्र खिंचवाते हुये।

आर्य समाज शहीद भगत सिंह नगर जालन्धर में दीपावली एवं महर्षि दयानन्द बलिदान दिवस के अवसर पर साप्ताहिक हवन यज्ञ का आयोजन किया गया जिसके मुख्य यजमान श्री कुबेर शर्मा एवं श्रीमती नंदिनी शर्मा ने सपरिवार यज्ञ वेदी पर उपस्थित होकर पवित्र पावन वेद मंत्रों से आहुतियां दी। आर्य समाज के पुरोहित धर्मेन्द्र विद्यालंकार ने यज्ञ को सम्पन्न करवाया।

यज्ञ के उपरान्त उमा शुक्ला तथा प्रिया मिश्रा ने मिल कर यज्ञ प्रार्थना करवाई। आर्य समाज के सुप्रसिद्ध भजनोपदेशक सुरेन्द्र सिंह गुलशन जी ने अपने मधुर भजनों से भक्तजनों को आनन्द विभोर कर दिया। आज के मुख्य प्रवक्ता श्री अश्विनी डोगरा जी ने कहा कि महर्षि दयानन्द सरस्वती जी के बलिदान को भुलाया नहीं जा सकता है। उन्होंने समाज तथा राष्ट्र के लिये अपने जीवन की आहुति दे दी। महर्षि

एक बहुत बड़े समाज सुधारक थे उनका कथन था कि समाज को पतन से बचाने के लिये हमें वेदों की ओर लौटना होगा इसीलिये उन्होंने नारा दिया कि वेदों की ओर लौट चलो। परन्तु दुर्भाग्यवश आज भी हम पूर्ण रूप से वेदों का अनुसरण नहीं कर पा रहे हैं इसीलिये धीरे धीरे पतन की ओर बढ़ रहे हैं। मैं आप लोगों से कहना चाहता हूँ कि हमें सर्वांगीण विकास के लिये वेदों की ओर लौटना ही पड़ेगा अतः वेदों की ओर लौटें।

आर्य समाज शहीद भगत सिंह नगर जालन्धर के प्रधान श्री रणजीत आर्य ने श्री राम जी के गुणों का वर्णन करते हुये कहा कि श्री राम ने विषम परिस्थितियों में भी स्थिति पर नियंत्रण रख सफलता प्राप्त की। उन्होंने हमेशा वेदों और मर्यादा का पालन किया। स्वयं के सुखों से समझौता कर उन्होंने न्याय

और सत्य का साथ दिया। सहनशीलता व धैर्य भगवान राम का प्रमुख गुण हैं। अयोध्या का राजा होते हुये भी श्री राम ने संन्यासी की तरह ही अपना जीवन यापन किया। यह उनकी सहनशीलता को दर्शाता है। हम भी भगवान राम की तरह सहनशील, दयालु, शक्तिमान, धनवान एवं यशवान बनें। हम मर्यादा पुरुषोत्तम श्री राम की मर्यादा को समझें तभी दीपावली पर्व मनाना सार्थक होगा। आर्य समाज चरित्र की पूजा करता है चित्र की नहीं। अगर मर्यादा पुरुषोत्तम श्री राम चन्द्र को जानना हो तो उसका चरित्र जाने, चित्र को नहीं। भरत की तरह आदर्श भाई, पिता पुत्र का स्नेह, राष्ट्र के प्रति स्नेह, सब रामायण में ही प्राप्त होगा।

उन्होंने आगे कहा कि दीपावली के शुभ अवसर पर हम यह प्रण लें कि ज्ञान के द्वारा हम स्वयं को प्रकाशित करेंगे। ज्ञान का प्रकाश हो जाने पर अज्ञानता रूपी अंधेरा स्वयं हट जाता है। ज्ञान से ही व्यक्ति मोक्ष को प्राप्त कर सकता है। अतः वेद तथा शास्त्रों का स्वाध्याय

करके अपने जीवन को ज्ञानमयी बनायें। महामंत्री हर्ष लखनपाल ने बहुत ही कुशलता से मंच का संचालन किया तथा आए हुये सभी अतिथि महानुभावों के प्रति आभार व्यक्त किया।

यज्ञ के इस पावन पर्व पर श्री ओम प्रकाश मेहता, श्रीमती पूनम मेहता, चौधरी हरी चंद, श्री विजय कुमार चावला, श्री सुरेन्द्र खन्ना, श्री सुरेन्द्र अरोड़ा, श्री सुभाष आर्य, श्रीमती इन्दु आर्या, अमन आर्य, अनु आर्य, प्रवीण लखनपाल, पवन शर्मा राजीव शर्मा, गीतिका अरोड़ा, संदीप अरोड़ा, वेद प्रकाश भाटिया, सुनित भाटिया, डिम्पल भाटिया, श्रीमती जगदीश भाटिया, अर्चना मिश्रा, अमित सिंह, ज्योति सिंह, प्रिया मिश्रा, ललित कालिया, सुदर्शन आर्य, स्वर्ण शर्मा, विजयलक्ष्मी शर्मा, शिखा आर्य, गौरव आर्य, मोहन लाल, मनु आर्य भी उपस्थित थे।

-हर्ष लखनपाल मंत्री आर्य समाज

वेदवाणी

इन्द्र के वज्र वाग्देवी की महती महिमा

इयं या परमेष्ठिनी वाग्देवी ब्रह्मसंशिता।

यथैव ससृजे घोरं तथैव शान्तिरस्तु नः॥

-अथर्व० १९।९।३

ऋषिः-वसिष्ठः॥ देवता-शान्तिः॥ छन्दः-अनुष्टुप्॥

विनय-हमारे अन्दर जो वाणी है वह एक बहुत बड़ी देवता है। हमारा दौर्भाग्य है हम इसके महात्म्य को नहीं समझते। यह तो परमेष्ठिनी है-परम में ठहरनेवाली है। इनका स्थान परमदेव में है, पर हम इसे तुच्छ-सी समझते हुए इसके साथ 'परमेश्वर से सम्बन्ध रखने वाली वाग् देवता' का-सा बर्ताव नहीं करते। यदि हम इसके साथ ऐसा ही बर्ताव करें और इसे ब्रह्मसंशिता बनाएँ तो इसके समान संसार में और कोई दूसरी शक्ति नहीं है। ब्रह्म से, ईश्वरीय ज्ञान से, ब्रह्मचर्य-प्राप्त ब्रह्मतेज से संशित की गई, तीक्ष्ण की गई वाणी एक ऐसा शस्त्र है, जो अमोघ है। यह इन्द्र का वज्र है। यह आत्मा की एकमात्र शक्ति है। अनादिकाल से संसार के सब दिव्य लोग इसी दिव्य हथियार को बरतते आये हैं। यह ठीक है कि जैसे प्रत्येक हथियार का सदुपयोग और दुरुपयोग दोनों किये जा सकते हैं वैसे इस वाक् का दुरुपयोग भी हो सकता है और सदा होता रहा है। इससे बड़े-बड़े दुष्कृत्य किये गये हैं। संसार में जो लड़ाई-झगड़े, उपद्रव और संग्राम होते रहते हैं प्रायः इन सबका मूल किसी-न-किसी रूप में वाणी का दुरुपयोग ही होता है। वाणी की तलवार के भाव कितने बुरे होते हैं और कितने भयंकर दुष्परिणाम के लाने वाले होते हैं, यह सभी अनुभवी लोग जानते और देखते हैं, परन्तु हम

शोक समाचार

आर्य प्रतिनिधि सभा पंजाब के सदस्य श्री वेद प्रकाश अग्रवाल जी रामां जिला बठिंडा का गत दिनों देहान्त हो गया। उनका अन्तिम संस्कार पूर्ण वैदिक रीति से किया गया। श्री वेद प्रकाश अग्रवाल जी आर्य समाज के समर्पित कार्यकर्ता थे। वे मिलनसार प्रवृत्ति एवं सरल स्वभाव के व्यक्तित्व थे। महर्षि दयानन्द जी की विचारधारा को जन-जन तक पहुँचाने के लिए त्याग भाव से कार्य करते थे। वे आर्य समाज एवं शिक्षण संस्थाओं की उन्नति के लिए हर कार्य में अपना सहयोग देते थे।

आर्य प्रतिनिधि सभा पंजाब श्री वेद प्रकाश अग्रवाल जी के अकस्मात् निधन पर गहरा दुःख व्यक्त करती है। मैं आर्य प्रतिनिधि सभा पंजाब एवं पंजाब की समस्त आर्य समाजों एवं शिक्षण संस्थाओं की ओर से दिवंगत आत्मा को श्रद्धा सुमन अर्पित करता हूँ तथा परमपिता परमात्मा से प्रार्थना करता हूँ कि वे दिवंगत आत्मा को शान्ति एवं सद्गति प्रदान करें तथा शोक संतप्त परिवार को धैर्य शक्ति प्रदान करें। दुःख की इस घड़ी में हम सभी शोक संतप्त परिवार के साथ हैं।

प्रेम भारद्वाज
संपादक एवं सभा महामन्त्री

कभी वाणी का दुरुपयोग नहीं करेंगे। अपनी वाणी का सदा शान्ति फैलाने के लिए, प्रेम व मेल बढ़ाने के लिए ही उपयोग करेंगे। इस वाणी का, परमेश्वर की प्रदान की हुई इस परम पवित्र वस्तु का, हम बहुत सोच-समझकर उपयोग करेंगे। इसके द्वारा हम ज़ख्मों को भरेंगे, फटे हुआँ को मिलाएँगे और पृथक् हुआँ को गले लगवाएँगे। हमारा सङ्कल्प है कि इस वाणी शक्ति द्वारा हम संसार में शान्ति फैलाएँगे, जगत् में शान्ति का संस्थापन करेंगे।

स्वामिनी आर्य प्रतिनिधि सभा पंजाब की तरफ से मुद्रक, प्रकाशक, सम्पादक प्रेम भारद्वाज द्वारा गायत्री प्रिंटिंग प्रैस, मण्डी रोड जालन्धर पंजाब से मुद्रित एवं गुरुदत्त भवन, चौक किशनपुरा, जालन्धर से प्रकाशित।

पीआरबी एक्ट के तहत प्रकाशित सामग्री के चयन हेतु उत्तरदायी किसी विवाद का न्यायिक क्षेत्र जालन्धर होगा। आर एन आई संख्या 26281/74 E-mail: apspunjab2010@gmail.com, www.aryapratinidhisabha.org